International Journal of Sociology and Political Science
www.sociologyjournal.in
Online ISSN: 2664-7745, Print ISSN: 2664-7737
Received: 06-08-2021; Accepted: 22-08-2021; Published: 06-09-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 14-16

भारतीय विदेश नीति में वर्ष 1990 के बाद आए परिवर्तनों का संक्षिप्त अध्ययन

Ashutosh Singh
Research Scholor, Department of Political Science, Rani Durgavati Viswavidhyalaya, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

सारांश
अधिकांश देश और उस पर भी बड़े ताकतवर देश आसानी से अपनी अंतर्राष्ट्रीय नीति को नहीं बदलते हैं। सरकारें अपनी विदेश नीति के बारे में रूढ़िवादी होती हैं। विदेश नीति में मूलभूत परिवर्तन तभी होते हैं जब देश के भीतर या दुनिया में कोई विलक्षण क्रांतिकारी परिवर्तन होता है। ये सत्य है कि दुनिया के साथ भारत के संबंधों में पिछले 2 दशक में बुनियादी बदलाव देखने को मिले हैं। भारत में ऐसा होने के पीछे कई कारक हैं। भारत में पुरानी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था ढह गई थी और बाह्य रूप से शीत युद्ध के अंत ने भारत की विदेश नीति को निर्देशित करने वाले सभी पुराने बेंचमार्कों को हटा दिया था। पुरानी व्यवस्था के कई मूल मतों को त्याग दिया और नए मतों पर आम सहमति बनी थी। सोवियत संघ के पतन और आर्थिक वैश्वीकरण की नई लहर ने भारत को बाहरी संबंधों के संचालन के लिए नए अवसर खोजने और नए तरीके से दुनियां में पांव पसारने के लिए प्रेरित किया। 1990 के दशक के बाद से, हालांकि, भारतीय नेताओं के लिए चुनौती यह रही है कि नेहरू के विचारों की पुनर्व्याख्या की जाए ताकि नए राजनीतिक संदर्भ का सामना किया जा सके। नए भारतीय नेता न तो नेहरू की निंदा कर सकते थे और न ही औपचारिक रूप से नेहरू के विचारों को अस्वीकार कर सकते थे, क्योंकि इससे गंभीर राजनीतिक परेशानी पैदा हो सकती थी। फिर भी उन्हें नई आवश्यकताओं के अनुरूप भारत की विदेश नीति में लगातार सुधार करते रहना पड़ा। यह आसान नहीं रहा है। नए की अनिवार्यता और विदेश नीति का संचालन करने के बारे में पुराने विचारों के प्रतिरोध के बीच तनाव वास्तविक है और निकट भविष्य में खत्म होने की संभावना नहीं है। पुराने के प्रति लगाव और नए के प्रति भय की भावना भारतीय कूटनीति के सभी पहलुओं में अमेरिका को उलझाने से लेकर छोटे से छोटे पड़ोसियों के प्रति अपनायी गयी रणनीति तक में दिखाई देता रहता है। भारत की "नई" विदेश नीति का कार्य वास्तव में प्रगति पर है। फिर भी यह देखना मुश्किल नहीं है कि आंतरिक और बाह्य आवेगों के बीच भारतीय कूटनीति की दिशा काफी बदल गई है।

मूल शब्दः भारत, भारतीय विदेश नीति, कूटनीति, 1990 का दशक

प्रस्तावना
किसी भी देश के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक कारक होता है उसकी विदेश नीति। विदेश नीति[1] ही देश के हर प्रकार के विकास को प्रभावित करती है। विदेश नीति किसी भी देश की वह नीति अथवा नजरिया होता है, जिसके द्वारा वह देश वैश्विक स्तर पर दूसरे देशों के साथ व्यवहार करता है। इस व्यवहार के अंतर्गत दूसरे देशों के साथ संबंधों के निर्माण (निकटता,दूरी, निष्पक्षता आदि) की प्रक्रिया आती है। विदेश नीति मुख्यतः किसी भी देश के राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए उनको सुरक्षित संवर्धित करते हुए विकसित करने की एक सूंदर और जीवंत कला है।

अन्तर्राष्ट्रीयता के इस युग की अपनी विशेषताएं हैं। इस तीव्र गति से चलने वाले युग और वैश्विक धरातल में देशों का एक दूसरे पर निर्भर होना अथवा रहना एक वास्तविकता है जिसे कोई भी व्यक्ति नकार नहीं सकता। इसी दौड़ में आज विश्व के सभी छोटे बड़े देश अपने–अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा उनकी साध्यता[2] और उनके संरक्षण तथा सम्वर्द्धन के लिये उद्यमरत रहते हैं। इसी प्रयोजन से प्रत्येक देश अपने विदेशी सम्बन्धों को लेकर सदैव संभलकर और सोच विचार करके ही विदेश नीति का संचालन करता है। इसलिए वैश्विक धरातल पर सभी देश इस प्रयास में रहते हैं कि उनकी विदेश नीति से किसी भी देश के साथ उनके संबंध खराब न हो और न ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई कु–प्रभाव पड़े। इसी प्रयास में सभी देश निज राष्ट्रीय हितों का अन्तर्राष्ट्रीय हितों के साथ समन्वय और सामंजस्य बनाये रखने के लिए उद्यमरत रहते हैं। इस क्षेत्र में भारत भी कोई अछूता या अपवाद नहीं है। भारत की विदेश नीति भी सामंजस्य के सिद्धांतों पर ही आधारित रहती है।[3] सन 1990 के बाद से भारतीय विदेश नीति में काफी परिवर्तन आये हैं। जिनके अपने ही लघु और दीर्घकालिक प्रभाव रहे हैं। इस शोध पत्र में 1990 के बाद से भारतीय विदेश नीति में आये महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर सूक्ष्म दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

अध्ययन क्षेत्र
भारत के वैश्विक दृष्टिकोण में एक संरचनात्मक परिवर्तन
भारत की वर्तमान विदेश नीति और रणनीति इसके सम्पूर्ण वैश्विक दृष्टिकोण में आये महत्वपूर्ण परिवर्तनों का एक सामूहिक स्वरुप है। इन सभी को भारतीय राजनीतिक नेतृत्व द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया गया था। पहले एक "समाजवादी समाज" के निर्माण पर राष्ट्रीय आम सहमति से एक "आधुनिक पूंजीवादी" समाज के निर्माण के लिए एक संक्रमण था। समाजवादी आदर्श, राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी जड़ों के साथ, 1970 के दशक के शुरू तक भारतीय राजनीतिक बहस पर इतना हावी हो गया था, कि 1976 में एक संवैधानिक संशोधन पारित किया गया था ताकि भारत को "समाजवादी गणराज्य" बनाया जा सके। लेकिन 1991 में सोवियत संघ का पतन देखा गया, जो समाजवाद के सत्य प्रतीक था और इसके बाद भारत में समाजवाद का महल उखड़ने लगा। वैश्वीकरण की नई चुनौतियों के अनुकूल अब प्रमुख अनेक राष्ट्रीय उद्देश्य बन गए। 1991 में राष्ट्रीय आर्थिक रणनीति में बदलाव ने अनिवार्य रूप से विदेश नीति के मोर्चे पर प्रचुर मात्रा में नए विकल्प तैयार किए। इसमें अंतर्निहित दूसरा परिवर्तन था, राजनीति पर पुराने समय से ही

दिए जा रहे विशेष बल से विदेश नीति निर्माण में 'अर्थशास्त्र' पर एक नया तनाव अथवा विशेष बल। भारत को 1990 के दशक में एहसास होने लगा था कि आर्थिक विकास में चीन सहित एशिया के बाकी हिस्सों में वह कितना पीछे रह गया था। समाजवादी चोला उतरने के साथ, और अन्य उभरते हुए बाजारों के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए बने दबाव के साथ भारतीय विदेशनीति ने अब अनिश्चितताओं की दुनिया में कदम रखा। अतीत में, विदेशी सहायता केवल प्रतीकात्मक थी जिसका उपयोग सरकार की बाह्य वित्तपोषण आवश्यकताओं के साथ–साथ विकासात्मक जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता था। परन्तु अब भारत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और विकसित दुनिया के हर प्रकार के बाजारों तक अपनी पहुंच बढ़ाने के लिए उद्यमरत था। लेकिन धीमे और सफल आर्थिक सुधारों ने भारत के सामर्थ्य को बढ़ाया, तेज गति से आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया और विश्व की महान शक्तियों, क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वियों (पाकिस्तान और चीन) और सभी पड़ोसी देशों के साथ अपने संबंधों को पुनर्परिभाषित करने का आधार प्रदान किया। भारतीय विदेश नीति में तीसरा संक्रमण या परिवर्तन "तीसरी दुनिया" के नायक होने के सामर्थ्य के बजाय अपने सामर्थ्य को पहचानने के बारे में है कि भारत अपने आप में एक महान शक्ति के रूप में उभर सकता है। जबकि स्वतंत्र भारत को हमेशा से ही अपनी महानता का बोध था, लेकिन 1990 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था के तेजी से बढ़ने की प्रक्रिया से पहले तक यह बोध यथार्थवादी नहीं लग रहा था। अपने स्वतंत्र अस्तित्व के शुरुआती दशकों में भारत ने 'तीसरी दुनिया' के चश्मे और 'साम्राज्यवाद विरोधी' दृष्टिकोण के माध्यम से अनेक अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय सुरक्षा संबंधी मुद्दों को देखा। लेकिन 1990 के दशक में भारत के सामने कुछ कड़वे सत्य प्रकट हुए। कोई वास्तविक तीसरी वैश्विक ट्रेड यूनियन नहीं थी, जिसको लेकर भारत का मानना था कि वह उसका नेतृत्व करता है। 1970 के दशक में एक क्रन्तिकारी चरण के बाद, अधिकांश विकासशील देशों ने व्यावहारिक आर्थिक नीतियों को अपनाना शुरू कर दिया था और अंतरराष्ट्रीय बाजार के साथ एकीकृत होने की मांग की थी। अधिकांश विकासशील दुनिया ने दक्षिण–एशिया को पीछे छोड़ते हुए बहुत आर्थिक प्रगति की थी। जहां तीसरी दुनिया पर बयानबाजी लोकप्रिय रही, वहीं भारत के नीति। केवल स्वयं के हितों के इर्द–गिर्ध ही केंद्रित रही। चीन के उदाहरण से यह धारणा बढ़ रही थी कि यदि भारत अपनी उच्च विकास दरों को कायम रखने में सफल रहता है तो उसके लिए अंतरराष्ट्रीय उच्च तालिका में महत्वपूर्ण स्थान हासिल करने का एक अवसर बनता है। 1990 के दशक में भारत ने "पश्चिमी विरोधी" राजनीतिक आवेगों को खारिज करना शुरू कर दिया था जो वैश्विक दृष्टिकोण में इतने प्रभावी थे कि उन्होंने सन 1991 तक भारतीय विदेशनीति को आकार दिया। "पश्चिमी विरोधी" चिंतन के तरीके को खारिज करना भारतीय विदेश नीति का चौथा महत्वपूर्ण संक्रमण या परिवर्तन था। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में भारत यूरो–अटलांटिक दुनिया के बाहर पश्चिमी राजनीतिक मूल्यों के लिए सबसे ज्यादा प्रतिबद्ध था। लेकिन शीत युद्ध ने भारत को पश्चिमी वैश्विक दृष्टिकोण के सबसे मुखर प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरते देखा। भारतीय विदेश नीति में एक दृढ पश्चिमी विरोधी पूर्वाग्रह है जिसे भारत के वामपंथियों और दक्षिणपंथियों का समर्थन प्राप्त है। लेकिन सोवियत संघ के गायब होने और चीन के एक महान शक्ति के रूप में उदय ने भारत को विदेश नीति को लेकर दशकों पुराने पश्चिमी विरोधी दृष्टिकोणों पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया। अंत में, 1990 के दशक में भारतीय विदेश नीति में पांचवां संक्रमण या परिवर्तन आदर्शवाद से यथार्थवाद की यात्रा था। आदर्शवाद स्वाभाविक रूप से भारतीय अभिजात वर्ग के लिए आया था जिसने ज्ञान के पहले सिद्धांतों के आधार पर उपनिवेशवाद के खिलाफ मोर्चा खोलकर अंग्रेजों से स्वतंत्रता हासिल की थी।[4]

भारत वैश्विक राजनीति में अपनी भूमिका को शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और बहुपक्षीयता के सिद्धांतों के एक नए अग्रदूत के रूप में देखने के लिए खड़ा है, जिसे अगर ठीक से लागू किया गया तो दुनिया में सकारात्मक परिवर्तन आएगा। हालांकि नेहरू ने कई मोर्चों पर यथार्थवाद का प्रदर्शन किया, विशेषकर भारत के तात्कालिक पड़ोस में, भारत की विदेश नीति की सार्वजनिक अभिव्यक्ति में आदर्शवाद की छाप थी। 1990 के दशक के बाद से भारत अब अपनी विदेश नीति के कथित आदर्शवाद को बनाए नहीं रख सका। चीन के लिए व्यावहारिकता निर्धारित करने वाले देंग जियाओपिंग[5] की तरह ही भारतीय नेताओं ने भारत के लिए सत्ता और समृद्धि हासिल करने के व्यावहारिक तरीकों पर जोर देना शुरू कर दिया।

नई विदेश नीति की गतिशीलता

एक ऐसा क्षेत्र जिसने इन सभी बदलावों के प्रभाव को शक्तिशाली तरीके से देखा, वह था भारत की परमाणु कूटनीति। वर्षों तक सार्वभौमिक निरस्त्रीकरण जैसे आदर्शवादी नारों को बढ़ावा देने के बाद, 1990 के दशक के अंत तक भारत ने एक घोषित परमाणु हथियार शक्ति सम्पन्न देश बनने के महत्व को पहचाना। दशकों से अपने सुरक्षा संबंधी वातावरण के परमाणुकरण के बावजूद भारत अपने राष्ट्रीय परमाणु हथियार कार्यक्रम के प्रति अपने दृष्टिकोण को लेकर अस्पष्ट बना रहा। यहां तक कि भारत ने सन 1974 में परमाणु बम का परीक्षण किया था, फिर भी इसने अपने परमाणु हथियार परियोजना को आगे बढ़ाने में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। लेकिन बदलते समय और वैश्विक परिवेश के कारण 1990 के दशक के अंत तक भारत ने स्वयं को स्पष्टरूप से परमाणु शक्ति सम्पन्न देश के रूप में विकसित करना अति आवश्यक समझा। दशक के आर्थिक विकास ने भारत को आत्मविश्वास दिलाया कि यह अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया को दरकिनार कर सकता है। भारत के संबंध में यह भी सत्य था कि उसके जैसे विशाल और अगणित आर्थिक क्षमताओं से परिपूर्ण देश को बहुत लंबे समय तक प्रतिबन्धित और अलग–थलग नहीं किया जा सकता। 1998 में परमाणु परीक्षण के दूसरे दौर के बाद सात साल के भीतर भारत ने जुलाई 2005 में जॉर्ज बुश प्रशासन के साथ ऐतिहासिक परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसके तहत अमेरिका अपने घरेलू अप्रसार कानून में बदलाव करने और भारत के पक्ष में परमाणु सहयोग संबंधी अंतरराष्ट्रीय दिशा–निर्देशों को संशोधित करने पर सहमत हुआ।

परिवर्तन का एक अन्य क्षेत्र वैश्विक शक्तियों के साथ भारत के संबंध भी थे। शीत युद्ध की समाप्ति और सोवियत संघ के पतन ने भारत को अतीत के राजनीतिक संकोच के बिना, सभी प्रमुख वैश्विक शक्तियों के साथ अपने संबंधों के विस्तार को आगे बढ़ाने का अवसर दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ लंबे समय से दुर्बल संबंधों में भारत ने अपनी प्रभावशाली विदेशनीति के कारण राजनीतिक और आर्थिक उत्प्रेरकों का उपयोग कर अपने संबंध सुदृढ़ किए। इसके साथ ही भारत सोवियत संघ के साथ भी अपने पुराने संबंधों और वर्तमान समय में नवीन संबंधों को लेकर अत्यंत सतर्क था। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से रूस हथियारों का एक महत्वपूर्ण स्रोत और एक रणनीतिक साझेदार बना हुआ है। इस बीच यूरोप, चीन और जापान के साथ भारत के संबंध कहीं अधिक सुदृढ़ और विविध हो गए हैं, लेकिन चीन के साथ सीमा विवाद के कारण कई बार उथल पुथल होती रहती है। 1990 के दशक के शुरू से चीन के साथ संबंधों का उन्नयन भारत की नई विदेश नीति की सबसे बड़ी

उपलब्धियों में से एक रहा है। चीन अब भारत के सबसे बड़े व्यापारिक साझेदार के रूप में उभरने के लिए तैयार प्रतीत होता है। शीत युद्ध से अलग हुए भारत और जापान ने हाल के वर्षों में राजनीतिक सहयोग के आधार का तेजी से विस्तार किया है और 2005 में रणनीतिक साझेदारी की घोषणा भी की है।

भारत की नई विदेश नीति अब "बिग पावर डिप्लोमेसी' के बारे में नहीं थी।[6] बल्कि इसमें अपने दो बड़े पड़ोसी देशों पाकिस्तान और चीन के साथ राजनीतिक सुलह कराने की पुरजोर कोशिश भी शामिल थी। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से भारत ने पाकिस्तान से मौलिक रूप से बदले हुए संदर्भ में बात करने की कोशिश की थी लेकिन पाकिस्तान परमाणु हथियारों को द्विपक्षीय समीकरण में लेकर आया और उसने आतंकवाद के जरिए भारत के अभिन्न अंग जम्मू–कश्मीर में घृणित खेल खेलना जारी रखा। 1990 के दशक में भारत–पाक संबंधों का कूटनीतिक इतिहास उतार चढ़ाव भरा है, जिसमें हर संभव विकास शामिल है। इसमें अनेक शिखर सम्मलेन, यात्रायें और छोटे बड़े युद्ध भी शामिल हैं। जिनमें 1999 का कारगिल युद्ध महत्वपूर्ण और बड़ा था। 2004 के बाद से एक नई शांति प्रक्रिया ने कश्मीर विवाद पर गंभीर बातचीत सहित भारत–पाक संबंधों को सामान्य बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया गया था। इसके साथ–साथ भारत चीन के साथ लंबे समय से चले आ रहे सीमा विवाद को समाप्त करने के लिए उद्देश्यपूर्ण बातचीत में भी जुटा हुआ है। अपनी स्वतंत्रता के बाद पहली बार भारत अब पाकिस्तान और चीन के साथ असुरक्षा संबंधित अपनी चिंताओं पर सीना ठोक कर बात कर रहा है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व अब मानता है कि इन दोनों समस्याओं का समाधान भारत की सुरक्षा स्थिति को मौलिक रूप से बदल देगा। 1990 के दशक तक, भारत (जो स्वयं को हमेशा दक्षिण एशिया में सबसे प्रमुख शक्ति के रूप में देखता था) ने पाया कि उसके संबंध छोटे पड़ोसी देशों के साथ एकदम मरणासन हैं और लगभग अंत तक पहुंच गए थे। अपनी दक्षिण एशियाई नीति को बदलने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भारत ने नीतिगत नवाचारों की एक श्रृंखला शुरू की जिसमें अधिक उदारता के साथ अपने छोटे पड़ोसियों के साथ कई संचित समस्याओं के समाधान में आधी से अधिक दूरी तय करने का निर्णय लिया था। इसके लिए भारत ने आर्थिक वैश्वीकरण की नीति शुरू की और उपमहाद्वीप में क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा देने के महत्व को भी समझा जो 1947 में इस क्षेत्र के विभाजन तक एक ही बाजार था। हालांकि इस क्षेत्र में भारत का प्रभाव बढ़ने लगा तो उसे अपने पड़ोसियों के आंतरिक झगड़ों में एकतरफा हस्तक्षेप करने के अपने पिछले अनुभवों से भी सीख ली थी। अतीत के विपरीत, जैसा की भारत ने प्रमुख शक्तियों को उपमहाद्वीप से बाहर रखने का प्रयास किया था, अब भारत नेपाल और श्रीलंका में राजनीतिक संकटों के समाधान में महान शक्तियों के साथ मिलकर काम कर रहा है। इस क्षेत्र में भारत के एकपक्षीय दृष्टिकोण को बहुपक्षीय दृष्टिकोण से तेजी से बदला जा रहा है। भारत ने क्षेत्रवाद के लिए प्रमुख तंत्र, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (।।त्व) में पर्यवेक्षक के रूप में चीन, जापान और अमेरिका की भागीदारी का भी समर्थन किया है। यहां तक कि भारत छोटे पड़ोसियों के प्रति एक नए दृष्टिकोण को परिभाषित करना चाहता है, इसलिए उपमहाद्वीप के क्षेत्रों ने भारत को हिंद महासागर और उसके तटवर्ती मामलों में अपनी बात रखने के लिए और अपने दावे को फिर से लागू करने का इशारा किया था। 1990 के दशक में भारत दक्षिण पूर्व एशिया, अफगानिस्तान और मध्य एशिया तथा मध्य पूर्व के क्षेत्र में फैले हुए अपने पड़ोसी देशों के साथ फिर से जुड़ने के लिए एक दृढ़ प्रयास कर रहा था। आसपास के क्षेत्रों के साथ भारत का नए सिरे से जुड़ाव एक नए ढांचे के भीतर है जिसने गुटनिरपेक्ष आंदोलन के माध्यम से तीसरी दुनिया की एकजुटता की पारंपरिक धारणा के बजाय आर्थिक संबंधों और ऊर्जा कूटनीति पर जोर दिया। शीत युद्ध और पहले चार दशकों में भारत की आर्थिक नीतियों ने अपने पड़ोस के पूर्व और पश्चिम में भारत के अस्तित्व को कमजोर किया था और नई दिल्ली को हिंद महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों में अपने महत्व को सुनिश्चित करने से रोका था। लेकिन भारत की नई आर्थिक और विदेश नीतियों ने भारत को अदन से मलक्का तक फैले क्षेत्र में भारतीय नेतृत्व की 20वीं सदी के मोड़ पर एक नवीन और महत्वपूर्ण अवसर दिया। दशकों के आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रवाद की उपेक्षा के बाद भारत अब पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन से लेकर अफ्रीकी यूनियन तक विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों में सक्रिय भागीदार है।[7] 1990 के दशक के दौरान भारतीय कूटनीति को इस्लामिक देशों से निपटने के लिए एक नई रणनीति विकसित करनी पड़ी। यहां तक कि इसने इजरायल के साथ अपने संबंधों को नए सिरे से दोहराया, जिसे दशकों तक काफी दुरी पर रखा गया था, इसके साथ ही भारत ने प्रमुख इस्लामी देशों के प्रति अपनी नीतियों को फिर से परिभाषित करने का उद्यम भी किया। लगभग 150 मिलियन से अधिक एक बड़ी इस्लामीक आबादी की वास्तविकता हमेशा से ही भारत की विदेश नीति में एक महत्वपूर्ण कारक रहा था। आज आर्थिक और वाणिज्यिक सहयोग, ऊर्जा सुरक्षा और धार्मिक चरमपंथ और आतंकवाद से निपटने में सहयोग के आधार पर इस्लामीक दुनिया के साथ संबंधों को प्रगाढ़ किया जा रहा है। इससे शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से इस्लामीक दुनिया से भारत के संबंधों में अभूतपूर्व गहराई और व्यापकता आई।

निष्कर्ष

1990 के दशक की शुरूआत से भारत की विदेश नीति और रणनीति में नवाचारों के परिणामस्वरूप सभी प्रमुख शक्तियों के साथ संबंधों के एक साथ विस्तार और एशिया और हिंद महासागर क्षेत्रों में बढ़ते प्रभाव और महत्वपूर्ण पड़ोसियों के साथ बेहतर संबंधों की संभावना की सुखद स्थिति उत्पन्न हुई है। अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में इसकी आसन्न सापेक्ष वृद्धि को देखते हुए भारत का कई चुनौतियों का सामना करना स्वाभाविक है। हाल के वर्षों में हाशिए पर होने के बावजूद आदर्शवाद और नैतिकता की अनिवार्यता भारत की विदेश नीति से पूरी तरह गायब नहीं हुई है। 1991 के बाद से, भारत ने अपनी पारंपरिक युक्ति "तर्क की शक्ति" से "शक्ति के तर्क" की ओर अपना ध्यान स्थानांतरित कर दिया है। अपने शोर–शराबे वाले लोकतंत्र को देखते हुए भारत विशुद्ध रूप से शक्ति के तर्क पर विदेश नीति की पहलों को घरेलू राजनीतिक समर्थन नहीं बना सकता। भारत को वैश्विक मंच पर अपने कार्यों को जायज ठहराने के लिए मूल्यों और मानदंडों की जरूरत हमेशा रहेगी। इसके परिणामस्वरूप "शक्ति और सिद्धांत" के बीच तनाव भारत की विदेश नीति की रणनीति में स्थायी रहेगा। दूसरा, बढ़े हुए सामर्थ्य का अर्थ होगा कि भारत को प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मुद्दों और क्षेत्रीय संघर्षों पर स्टैंड लेना होगा। हाल के वर्षों में, नई दिल्ली ने ऐसे विषयों को या तो टाला है या केवल उन्हें समान्य घटनाक्रम करार दिया है। भारत को अक्सर अंतरराष्ट्रीय प्रणाली के "सामूहिक हितों" में योगदान करने के लिए "राष्ट्रीय हित" की खोज को सीमित करने के तरीके खोजने होंगे।

तीसरा, चूंकि भारत विश्व में भावी शक्ति संतुलन के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उभर रहा है, इसलिए इस पर कम से कम विशिष्ट मुद्दों पर किसी न किसी बड़ी शक्ति के पक्ष में या विपक्ष में विकल्प चुनने के लिए दबाव निःसंदेह डाला जाएगा। पिछले कुछ वर्षों में

बड़ी शक्तियों से टकराव के अभाव ने भारत को "गुटनिरपेक्षता" के नारे को "स्वतंत्र" विदेश नीति में बदलने का अवसर दिया है। लेकिन अमेरिका, चीन, यूरोप, रूस और जापान के बीच संभावित नई प्रतिद्वंद्विता के बीच भारत राजनीतिक विकल्प चुनने या प्रस्तुत करने के लिए विवश होगा। हालांकि भविष्य में भारत के एक या अन्य प्रमुख शक्तियों के साथ संभावित गठजोड़ करने से इनकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ सूची

1. www-britannica-com/topic/foreign&policy
2. भारत की विदेश नीति, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक, हरियाणा, 2004, पृष्ठ 7
3. वही, पृष्ठ 5
4. मोहन, सी. राजा, भारत की नवीन विदेश निति और रणनीति, एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस, बीजिंग, 2006, पृष्ठ 1–9
5. ग्पंवचपदह, क्मदह, विकिपीडिया
6. दीक्षित, जे.एन., भारतीय विदेश निति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ 117
7. मोहन, सी. राजा, भारत की नवीन विदेश निति और रणनीति, एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस, बीजिंग, 2006, पृष्ठ 1–9